



E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2020; 2(4): 125-131
Received: 04-08-2020
Accepted: 07-09-2020

डॉ० पूनम कुमारी

इतिहास विभाग, ल० ना० मिथिला
विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर,
दरभंगा, बिहार, भारत

आधुनिक भारतीय राजनीतिक में जातिवाद और छुआछूत के खिलाफ स्वतंत्रता संग्राम

डॉ० पूनम कुमारी

DOI: <https://doi.org/10.33545/27068919.2020.v2.i4c.340>

सारांश

परम्परावादी सामाजिक संरचना में आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना भारतीय राजनीतिक का एक अद्भूत पक्ष है। उदारवादी जनतंत्रीय संस्थाओं और जाति व्यवस्था का पारस्परिक सम्बन्ध एक विचित्र समस्या प्रस्तुत करता है। जाति व्यवस्था भारतीय समाज का अटूट अंग रही है और इसने जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित किया है। स्वतन्त्रता से पूर्व भी जाति व्यवस्था का राजनीतिक जीवन पर काफी प्रभाव था। स्वतन्त्रता के बाद जाति व्यवस्था का अन्त नहीं हुआ, लेकिन स्वरूप अवश्य परिवर्तित हो गया। आज भी जातिप्रथा उतना तो नहीं लेकिन बरकरार है। जातिप्रथा मानव एवं समाज को प्रभावित करता है। इस सोच को बदलना समाज को नई दिशा प्रदान करना है।

मूल-शब्द: परम्परावादी, उदारवादी, परिवर्तित, जातिप्रथा, उपनिवेशों, छुआछूत, अन्योन्याश्रित।

प्रस्तावना

आधुनिक भारतीय राजनीतिक में जातिवाद और छुआछूत के खिलाफ स्वतंत्रता संग्राम उन भारतीय विचारकों पर निर्भर रहा जिन्होंने राष्ट्रीय राजनीतिक आन्दोलन का संचालन किया। सामान्यतः राजनीतिक अधिकारों की चेतना और राष्ट्रीयता की भावना के विकास को पर्यायवाची समझा जाता है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। विभिन्न उपनिवेशों में अथवा अधीन राज्यों में राष्ट्रीय आन्दोलन हुए हैं, लेकिन वे आवश्यक रूप से राजनीतिक सुविधाओं और अधिकारों तक सीमित नहीं रहे हैं। राजनीतिक अधिकारों के आन्दोलन भी राष्ट्रीय बन सकते हैं, यदि वह आन्दोलन समस्त देशवासियों को प्रेरित तथा प्रभावित कर सकें।

1914 में ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन शुरू हुआ था। आन्दोलन तमिलनाडु में ब्राह्मण को उच्च स्थानों से हटाने के लिए किया गया था। 1916 में एक पृथक राजनीतिक दल 'जस्टिस पार्टी' के नाम से स्थापित हुआ। 1922 में सरकार द्वारा लोक सेवाओं में निर्धारित किए गए कि कोटे में गैर ब्राह्मण जातियों के लिए लगभग 42 प्रतिशत और ब्राह्मण जाति के लिए 16 प्रतिशत स्थान निर्धारित किया गया। ब्रिटिश काल में ही गैर ब्राह्मण जातियाँ ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन में बड़ी हद तक सफल हुआ। 1949 में यह आन्दोलन सी० एन० अन्नादुराई के नेतृत्व में डी० एम० के० के अधीन शुरू हुआ। अतः हम कह सकते हैं कि स्वतन्त्रता से पहले और स्वतन्त्रता के बाद तमिलनाडु में ब्राह्मण और निम्न जातियों के बीच घोर टकराव रहा और इस संघर्ष में ब्राह्मणों को पराजित होना पड़ा।

छुआछूत के खिलाफ 1917 से 1938 तक संघर्ष चला उसके बाद भी छुआछूत को खत्म नहीं कर पाया लेकिन स्वाधीन भारत के संविधान में राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव दिखाई पड़ा। जातीय असमानता को नकारा गया छुआछूत को अपराध घोषित किया।

मूल स्रोत

राजनीतिक व्यवस्था का जाति व्यवस्था पर प्रभाव, जाति व्यवस्था का राजनीतिक पर प्रभाव, छुआछूत के खिलाफ, वायकोम सत्याग्रह, गुरुवायूर सत्याग्रह। भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रारम्भ होने के पश्चात् सामान्य रूप से यह धारणा विकसित हुई कि पश्चिमी राजनीतिक तंत्र और जनतन्त्रात्मक मूल्यों को अपनाने के फलस्वरूप भारतीय समाज से जातिवाद का अन्त हो जाएगा। इसीलिए यह प्रश्न बराबर उठता रहा है कि क्या जातिवाद का लोप हो रहा है? गत 55 वर्षों में राजनीतिक संस्थाओं की कार्यप्रणाली और सामान्य राजनीतिक जीवन के अनुभव से इस बात का संकेत मिलता है कि भारत की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पर जातिवाद का प्रभाव विद्यमान है। अमेरिकी लेखकगण लाएड रुडाल्फ तथा सूजन रुडाल्फ ने यह विचार प्रतिपादित किया है कि भारतीय समाज से जाति का विनाश नहीं हो सकता, जाति का स्वरूप अवश्य परिवर्तित होता रहेगा।

Corresponding Author:

डॉ० पूनम कुमारी

इतिहास विभाग, ल० ना० मिथिला
विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर,
दरभंगा, बिहार, भारत

एक परम्परावादी व्यवस्था के, आधुनिकीकरण के मूल्यों के अनुरूप, परिवर्तित होने को ही उन्होंने 'परम्पराओं की आधुनिकता' का नाम दिया है। रजनी कोठारी का यह मत है कि भारतीय राजनीति और जाति व्यवस्था के पारम्परिक सम्बन्धों के विषय में यह आशा करना कि जनतन्त्रीय संस्थाओं की स्थापना के बाद जाति व्यवस्था का लोप हो जाना चाहिए, एक भ्रामक और त्रुटिपूर्ण विचार है उनका यह दावा है कि कोई भी सामाजिक तंत्र कभी भी पूर्णतया समाप्त नहीं हो सकता, अतः यह प्रश्न करना कि क्या भारत में जाति का लोप हो रहा है, व्यर्थ है। वास्तव में सामाजिक और राजनीतिक जीवन को एक दूसरे से पूर्णतया पृथक् नहीं किया जा सकता, वह अन्योन्याश्रित तथा एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और एक दूसरे के स्वरूप को निर्धारित करने में समान महत्त्व रखते हैं, इसीलिए रजनी कोठारी का कहना है कि वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में यह प्रश्न ज्यादा सार्थक है कि 'आधुनिक राजनीति के प्रभाव में जाति व्यवस्था किस प्रकार का रूप धारण कर रही है और एक जाति-अभिमुख समाज में राजनीति क्या स्वरूप अपना रही है?' उनका यह भी कहना है कि "वे लोग जो भारतीय राजनीति में जातिवाद के विद्यमान होने की शिकायत करते हैं, वह एक ऐसी राजनीति की कल्पना करते हैं जो समाज में सम्भव नहीं है। वास्तव में जिसे राजनीति में जातिवाद कहा जाता है, वह जातियों के राजनीतिकरण से अधिक और कुछ नहीं है।"

भारत में राजनीति और जाति व्यवस्था के पारस्परिक सम्बन्धों को ठीक ढंग से समझने के लिए हमें कई प्रश्नों पर विचार कराना होगा—

1. भारतीय राजनीति के बदलते हुए स्वरूप ने जाति व्यवस्था को कहाँ तक और किस प्रकार परिवर्तित किया है।
2. जाति व्यवस्था ने भारत के राजनीतिक तंत्र की कार्यशीलता को कहाँ तक और किस रूप में प्रभावित किया है।
3. जाति व्यवस्था भारत के आधुनिक राजनीतिक तंत्र के कार्य संचालन में बाधक हुई है अथवा सहायक।

राजनीतिक व्यवस्था का जाति व्यवस्था पर प्रभाव

ऐसा लगता है कि भारत में जाति व्यवस्था और राजनीतिक तंत्र दोनों ने एक दूसरे को प्रभावित किया है और यह द्विपक्षीय प्रभाव इस कारण स्वाभाविक प्रतीत होता है कि आधुनिक समाजों में राजनीतिक सत्ता में बिना भागीदार बने कोई भी समूह अपना सम्पूर्ण विकास नहीं कर सकता। इसलिए आधुनिक समाजों में राजनीतिक उदासीनता और राजनीतिक अलगाव वांछनीय नहीं है। राजनीति एक प्रतियोगी क्रिया है, इसका लक्ष्य कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करना है। एक ऐसे समाज में जिसमें राजनीतिक समानता के सिद्धान्त को मान्यता दी गई हो और उसमें सरकार का निर्माण और परिवर्तन बहुमत की इच्छा के द्वारा होता हो, प्रत्येक उस समूह के लिए जो राजनीतिक सत्ता को ग्रहण करना चाहता है, अन्य समूहों की सहायता और समर्थन प्राप्त करना आवश्यक होगा। यही कारण है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् जब भारत की राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन आया और गणतंत्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की गई, धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त को अपनाया गया, जातीय भेदभाव को अवैधानिक घोषित किया गया और वयस्क मताधिकार के द्वारा देश के प्रत्येक नागरिक को उसके धर्म, जाति, मूल वंश आदि के भेदभाव को स्वीकार किए बिना राजनीति में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया तो परम्परावादी जाति व्यवस्था के बंधन ढीले पड़े। उच्च राजनीतिक पद जो अब तक उच्च जातियों के जन्मजात अधिकार समझे जाते थे, यह समाज के हर छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, उच्च और निम्न जाति के लोगों के लिए उपलब्ध हो गए। राजनीतिक समानता ने सामाजिक असमानता की दीवारों को तोड़ दिया। बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों में एक ओर

निम्न जातियों को राजनीति में प्रवेश करने का अवसर प्राप्त हुआ और दूसरी ओर इस नई राजनीतिक व्यवस्था में समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए उच्च जाति के लोगों को परिस्थितिवाश निम्न जातियों के सहयोग और समर्थन के लिए हाथ फैलाना पड़ा, क्योंकि वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक पदों का आधार प्रतियोगिता बन गई। इस राजनीतिक प्रतियोगिता में सफलता प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण और क्षत्रियों को शूद्रों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक हो गया। यहाँ तक कि गैर सुरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों में भी उच्च जाति के मतदाताओं ने निम्न जाति के उम्मीदवारों को निःसंकोच रूप से अपने प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित किया। राजनीतिक आधुनिकीकरण ने सामाजिक प्रतियोगिता के नए द्वार खोल दिए। परम्परावादी समाज में सामाजिक स्थिति को प्राप्त करने के लिए किसी प्रतियोगिता का प्रश्न नहीं था, क्योंकि सामाजिक स्थिति पैतृक अथवा जन्म से निर्धारित होती थी। आधुनिक राजनीति ने स्थिति-निर्धारण का आधार व्यक्तिगत निष्पादन अथवा उपलब्धि को बना दिया। अतः विभिन्न जातियों को अपने परम्परावादी बंधनों को तोड़ कर एक दूसरे के समर्थन को प्राप्त करने के लिए हाथ बढ़ाना पड़ा। भारत की परम्परावादी जाति व्यवस्था में यह मौलिक परिवर्तन था कि विभिन्न जातियों के बीच पारस्परिक सहयोग की भावना का विकास हुआ। राजनीति में धर्मनिरपेक्षता के तत्त्व के प्रवेश करने के फलस्वरूप विभिन्न जाति समूहों को धर्म निरपेक्षता के रवैये को किसी न किसी मात्रा और रूप में अपनाया पड़ा, क्योंकि बदलती हुई राजनीतिक व्यवस्था और बदलते हुए राजनीतिक मूल्यों को अपनाए बिना राजनीतिक क्षेत्र में सफलता सम्भव न थी। अतः यह कहना गलत न होगा कि भारत की जाति व्यवस्था के परम्परावादी स्वरूप में परिवर्तन आना देश में होने वाले राजनीतिक परिवर्तनों का स्वाभाविक परिणाम था।

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि विभिन्न जातियों में विशेषकर उच्च जातियों की अभिवृत्ति में होने वाला परिवर्तन पूर्णतया ऐच्छिक था या राजनीतिक विवशता अथवा राजनीतिक स्वार्थ का फल। परन्तु प्रत्येक जाति समूह ने यह महसूस किया कि राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने, अपने हितों को सुरक्षित रखने और सामाजिक प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए राजनीति के बदलते हुए मूल्यों को अपनाया जरूरी है। परिणाम यह हुआ कि समाज की सभी जातियों ने सक्रिय राजनीति में प्रवेश किया। राजनीति में सफलता के लिए उन्हें उदारवादी तथा सहिष्णुता का दृष्टिकोण अपनाया पड़ा, क्योंकि इसके बिना चुनाव में सफलता सम्भव न थी। अतः सामान्य रूप से सभी जातियों ने राजनीतिक समानता के सिद्धान्त को स्वीकार करने और धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त को अपनाने की घोषणा की।

यह कहना गलत न होगा कि उच्च जातियों ने राजनीतिक आधुनिकीकरण के कुछ मूल्यों को बड़ी हद तक परिस्थितियों से मजबूर होकर ग्रहण किया और शायद इसी कारण भारतीय राजनीति में 'राजनीतिक दिखावापन' के तत्त्व ने प्रवेश किया जिसकी व्याख्या मोरेस जोंस ने 'राजनीति की विभिन्न भाषाएँ' शीर्षक के अन्तर्गत की है।³ इसका अर्थ यह है कि उच्च जातियों ने समानता के सिद्धान्त को व्यावहारिक कारणों और राजनीतिक विवशता से स्वीकार किया, यद्यपि आन्तरिक रूप से वह परम्परावादी मूल्यों को अपने दिल से पूरी तरह न निकाल सके। परिणाम यह हुआ कि सक्रिय राजनीति में प्रवेश करने के बाद ब्राह्मणों तथा अन्य उच्च जातियों ने शूद्रों तथा अन्य पिछड़ी जातियों के साथ उठना-बैठना, खाना-पीना आरम्भ किया और अपने ब्राह्म आचरण से यह सिद्ध करना चाहा कि वे परम्परागत जातीय भेद-भाव पर विश्वास नहीं करते और वे राजनीतिक तथा सामाजिक समानता के उपासक हैं। इस स्थिति के परिणामस्वरूप भारतीय राजनीति में भाग लेने वालों के बाह्य आचरण और उनके

आन्तरिक विचारों और विश्वासों में परस्पर विरोध उत्पन्न हुआ। उच्च जातियों की इस आन्तरिक भावना के कारण राजनीतिक और आर्थिक लाभों के वितरण में धर्म और जाति के आधार पर विभेद विद्यमान रहा। इसीलिए मॉरिस जॉस का यह कहना है कि भारतीय राजनीति के सहभागियों की कथनी और करनी में अन्तर है।⁴

कुछ भी हो भारत की राजनीतिक व्यवस्था के परिवर्तित होने से दो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। प्रथम, यह कि राजनीतिक क्षेत्र सर्वसाधारण के प्रवेश के लिए खुल गया और अवसरों की समानता ने हर जाति के लोगों को राजनीति में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। द्वितीय, राजनीतिक सफलता के लिए बहुमत के समर्थन को प्राप्त करने की आवश्यकता ने उच्च जातियों को इस बात के लिए बाध्य किया कि वे अपनी परम्परावादी अभिवृत्ति को परिवर्तित करें और आधुनिक 'राजनीतिक भाषा' को ग्रहण करें। इन दोनों परिवर्तनों के फलस्वरूप जाति व्यवस्था का परम्परावादी स्वरूप परिवर्तित हो गया।

यह निश्चित हो जाने के बाद कि भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण ने परम्परावादी जाति व्यवस्था के स्वरूप को परिवर्तित किया है, दूसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि इस परिवर्तन में किन तत्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है और किन कारणों से उच्च जाति के लोगों ने आधुनिकीकरण के मूल्यों को ग्रहण किया है।

जाति व्यवस्था के परम्परावादी स्वरूप को परिवर्तित करने में तीन कारक महत्वपूर्ण दिखाई देते हैं। प्रथम संस्कृतिकरण, द्वितीय पश्चिमीकरण और तृतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण। यद्यपि यहाँ पर हमारा विशेष उद्देश्य यह निश्चित करना है कि राजनीति के स्वरूप में होने वाले परिवर्तन से जाति व्यवस्था किस सीमा तक प्रभावित हुई है, लेकिन इस सम्बन्ध में अन्य कारकों की उपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि किसी भी देश की सामाजिक संरचना में परिवर्तन साधारणतया बहुमुखी शक्तियों के फलस्वरूप होता है।

संस्कृतिकरण शब्द का प्रयोग सबसे पहले समाजशास्त्री एम0 एन0 श्रीनिवास ने किया।⁵ उनके अनुसार देश में होने वाले पुनर्जागरण और बौद्धिक पुनरुत्थान ने निम्न जातियों को उच्च जातियों के आचार-विचार तथा रहन-सहन को अपनाने के लिए प्रेरित किया और उन्होंने अपने परम्परावादी व्यवसाय को बदल कर ऐसे व्यवसायों को अपनाना प्रारम्भ किया जो उच्च जातियों के लिए नियत थे। परिणाम यह हुआ कि निम्न जातियों का रहन-सहन उच्च जातियों के रहन-सहन के इतना समरूप हो गया कि उनके बीच अन्तर करना कठिन हो गया। यहाँ तक कि कुछ निम्न जातियों ने सम्मानपूर्ण स्थिति प्राप्त करने के लिए अपना जाति-चिन्ह तक परिवर्तित कर दिया। संस्कृतिकरण की प्रक्रिया ने सामाजिक स्तर पर जाति-विभेदीकरण और जाति-श्रेणीकरण के परम्परावादी स्वरूप को काफी हद तक बदल दिया, क्योंकि विभिन्न व्यक्तियों की जाति को पहचानने का आधार उनका वाह्य आचरण, रहन-सहन और व्यवसाय ही हो सकता था। निम्न जातियों द्वारा अपने व्यवहार, खान-पान के तरीके और अपना जाति चिन्ह बदलने तथा विशेष रूप से अपने जन्म-स्थान से शहरों की ओर चले जाने के परिणामस्वरूप उनकी जाति को पहचानना मुश्किल हो गया। इस प्रकार होने वाली जातीय गतिशीलता से जाति व्यवस्था के स्वरूप का परिवर्तित होना स्वाभाविक था।

जाति व्यवस्था के स्वरूप को बदलने में पश्चिमीकरण दूसरा महत्वपूर्ण कारक रहा है। अंग्रेजों के भारत में आगमन के बाद निम्न जातियों की स्थिति में कुछ परिवर्तन आया। अंग्रेजों ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण उसके जन्म के बजाय उसकी व्यक्तिगत क्षमता,

निष्पादन और उपलब्धि के द्वारा होना चाहिए। अंग्रेजी शिक्षा के प्रारम्भ होने के परिणामस्वरूप उच्च और निम्न जाति के लोगों को बौद्धिक विकास तथा पश्चिमी राजनीतिक एवं सामाजिक संस्कृति से परिचित होने का अवसर मिला और भारत के सामाजिक स्वरूप में अनेक प्रकार के सुधार किए जाने लगे। पश्चिमीकरण से भारतवासियों का मानसिक क्षितिज विस्तृत हुआ और साथ ही वैज्ञानिक आविष्कारों और औद्योगिक विकास ने उनकी सामाजिक मनोवृत्तियों को बहुत कुछ बदल दिया। पश्चिमीकरण ने स्वाभाविक रूप से धार्मिक अंधविश्वासों और जाति व्यवस्था के प्राकृतिक और धार्मिक आधार को चोट पहुँचाई और इस विचारधारा को विकसित किया कि एक उन्नतिशील और विकसित राष्ट्र के निर्माण के लिए प्रत्येक व्यक्ति के कार्यों का निर्धारण उसकी व्यक्तिगत क्षमता पर किया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय आन्दोलनजातिवाद की उपेक्षा करते हुए देश की स्वतन्त्रता के लिए सभी व्यक्तियों का सहयोग और समर्थन प्राप्त करना चाहा, विशेषकर गांधी जी ने शूद्रों और निम्न जाति के लोगों को ऊपर उठाने और सामाजिक भेद-भाव का अन्त करने का उपदेश दिया।

भारत को स्वतन्त्रता मिली, लेकिन एक लम्बे संघर्ष के परिणामस्वरूप। इस संघर्ष में निम्न जातियों की भूमिका किसी तरह उच्च जाति के लोगों से कम महत्वपूर्ण नहीं रही और यह कहना गलत न होगा कि एक राजनीतिक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पहली बार समानता के सिद्धान्त को राष्ट्रीय स्तर पर अपनाया गया। राष्ट्रीय आन्दोलन ने यह सिद्ध कर दिया कि परम्परावादी जाति व्यवस्था की यह अवधारणा कि कुछ लोग जन्म से ही निम्न प्रकार के कार्यों के सम्पादन के लिए नियत होते हैं, गलत है। यद्यपि भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण का प्रारम्भ अंग्रेजों के आगमन से माना जाता है, किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण की गति तेज हो गई। भारतीय संविधान ने स्वतन्त्रता, समानता, धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्तों को राजनीतिक व्यवस्था का मूल आधार माना और राजनीति के विभिन्न स्तरों पर जनतन्त्रीय संस्थाओं की स्थापना की। प्रौढ़ मताधिकार को मान्यता देने और सरकार के विभिन्न स्तरों के गठन के लिए निर्वाचन पद्धति को अपनाने के फलस्वरूप राजनीति के दरवाजे सर्वसाधारण के लिए खुल गए और किसी भी राजनीतिक पद को प्राप्त करने के लिए, धर्म, वंश, जाति अथवा शिक्षा जैसी कोई शर्त नहीं रखी गई। फलस्वरूप जनसाधारण बड़ी संख्या में इस प्रतियोगात्मक राजनीति में भाग लेने लगे और उनका लक्ष्य राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करना हो गया।

इस नई राजनीतिक व्यवस्था और नये राजनीतिक मूल्यों ने विभिन्न जातियों के दृष्टिकोण को मूल रूप से परिवर्तित कर दिया। अथवा यह कहा जाए कि राजनीतिक परिस्थितियों ने विभिन्न समूहों को राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में महत्ता प्राप्त करने हेतु अपने मूल स्वभाव को बदलने के लिए मजबूर किया। जैसा पहले भी लिखा जा चुका है कि परम्परावादी भारतीय समाज में पाई जाने वाली वर्ण व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति का कार्य उसके जन्म द्वारा निर्धारित होता था और अपनी सामाजिक स्थिति को बनाने के लिए उसे कोई संघर्ष करने की आवश्यकता नहीं थी। अतः विभिन्न पदों को प्राप्त करने के लिए यदि कोई प्रतियोगिता थी भी तो वह एक जाति विशेष के अन्तर्गत ही सीमित रहती थी, अतः विभिन्न जातियों का उद्देश्य अपने मूलस्वरूपों को निम्न जातियों के हस्तक्षेप और वर्णसंकरता अथवा दूषण से सुरक्षित रखना था।

आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था ने इस स्थिति को मूल रूप से परिवर्तित कर दिया। प्रतियोगी राजनीति के उदय के बाद प्रत्येक व्यक्ति ने, चाहे वह ब्राह्मण हो या शूद्र, राजनीतिक क्षेत्र में होने वाली इस प्रतियोगिता में भाग लेना आरम्भ किया और प्रत्येक

जाति-समूह का मूल उद्देश्य अपनी जातीय शुद्धता को बनाए रखने के बजाय अपनी जाति के हितों को अधिक से अधिक बढ़ावा देना हो गया। इन परिस्थितियों में प्रत्येक जातीय समूह के लिए आवश्यक हो गया कि राजनीतिक क्षेत्र में वह अधिक प्रभावशीलता प्राप्त करे, क्योंकि बिना राजनीतिक संस्थाओं में उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त किए हुए वह अपने हितों को सुरक्षित और विकसित नहीं कर सकते थे। राजनीतिक संस्थाओं में प्रवेश के लिए संविधान ने निर्वाचन प्रणाली को स्थापित किया। परिणामस्वरूप विभिन्न राजनीतिक पदों को प्राप्त करने के लिए बहुमत का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक हो गया। इस राजनीतिक आवश्यकता ने उच्च जातियों के सदस्यों, जो संख्या की दृष्टि से निम्न जातियों से कम हैं, निम्न जातियों के साथ घुल-मिल जाने के लिए विवश कर दिया और इस प्रकार राजनीतिक कारणों से उच्च जातियों और निम्न जातियों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुए। इस बदलते हुए राजनीतिक वातावरण में किसी भी जाति के लिए यह सम्भव न रहा कि वह अपने को राजनीति से अलग रखे, क्योंकि राजनीतिक व्यवस्था में सक्रिय रूप से भाग लिए बिना किसी भी प्रकार का लाभ मिलना सम्भव न था।

परम्परावादी सामाजिक व्यवस्था में जातियों की पहचान नामों और उपनामों; उनके व्यवसाय तथा उनके रहने-सहन के ढंग से होती थी। प्रत्येक जाति के लिए जन्म से उसके कार्य नियत थे। आधुनिकीकरण के फलस्वरूप निम्न जाति के लोग उच्च जाति के उपनाम जैसे सिंह, शर्मा आदि का प्रयोग करने लगे। इसी प्रकार ऊँची जाति के लोग भी उन पेशों को अपना लिया जो निम्न जाति के लिए निर्धारित थे। अतः कौन किस जाति का है इसकी पहचान उस व्यक्ति के नाम या उसके पेशों से नहीं की जा सकती।

राजनैतिक आधुनिकीकरण का एक और महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज में जातियों के बीच संघर्ष और टकराव पहले से ज्यादा बढ़ गया। पहले यह टकराव अन्तर-जातीय (Inter-caste) अर्थात् उच्च और निम्न जातियों के बीच था अब यह टकराव दोहरा (twofold) हो गया। एक ओर उच्च और निम्न जातियों के बीच है और दूसरी ओर प्रत्येक उच्च और निम्न जाति आन्तरिक रूप से विभाजित है और एक दूसरे के विरुद्ध संघर्षरत है। उदाहरण के लिए पिछड़ी जातियों या अनुसूचित जातियों में भी अनेक जातियाँ हैं और प्रत्येक जाति वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में अपनी भागीदारी और अपने हक के लिए एक दूसरे के मुकाबले में है। इसे अन्तरजातीय टकराव (Inter-caste conflict) कहा जाता है। इस प्रकार आधुनिकीकरण ने अन्तर्जातीय और अन्तरजातीय संघर्ष को जन्म दिया है और जाति सम्पूर्ण राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु बन गई है। देश के पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप परिवहन और संचार के साधनों का विकास हुआ और देश के विभिन्न भागों में रहने वाले जाति-समूहों के बीच विचारों का आदान-प्रदान प्रारम्भ हुआ। इससे जाति-जागरूकता बढ़ी और जातीय आधार पर देश में विभिन्न समूहों का निर्माण हुआ। जातीय आधार पर बनने वाले संगठनों का उद्देश्य सक्रिय राजनीति में प्रवेश करके राजनीतिक सत्ता में भागीदार बनना तथा प्रत्येक क्षेत्र में समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त करना था। यह समझा जाने लगा कि विभिन्न जातियाँ, जाति के आधार पर संगठित होकर विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं में अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त कर सकती हैं। अतः यह कहना गलत न होगा कि स्वतंत्रता के पश्चात् स्थापित होने वाले राजनीतिक तंत्र से जाति व्यवस्था में यह मौलिक परिवर्तन आया कि अब जाति स्वयं कोई लक्ष्य न रहकर राजनीतिक सत्ता अथवा राजनीति में सफलता प्राप्त करने का एक साधन मात्र बन गई। इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि आज के भारतीय समाज में कोई ब्राह्मण

या क्षत्रिय इस कारण अपनी जाति के लोगों को संगठित नहीं करता कि वह जाति व्यवस्था के परम्परावादी स्वरूप अथवा जातीय शुद्धता को बनाए रखना चाहता है, वरन् वह अपनी जाति के सुसंगठित समर्थन को, व्यक्तिगत राजनीतिक लाभों को प्राप्त करने के लिए एक साधन के रूप में अपनाना चाहता है। दूसरी ओर राजनीतिक स्वार्थ के कारण ही एक उच्च जाति का व्यक्ति निम्न जाति के लोगों के साथ उठने-बैठने, खाने-पीने और उनकी सामाजिक क्रियाओं में सम्मिलित होता है, क्योंकि इसके बिना उसे अपना राजनीतिक भविष्य अंधकारमय दिखाई देता है। वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था ने विभिन्न जातियों के बीच इस प्रकार की अन्योन्याश्रित स्थिति उत्पन्न कर दी है कि अब कोई भी जाति-समूह बिना दूसरी जातियों की सहायता और समर्थन के राजनीतिक सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। अतः आधुनिक राजनीतिक तंत्र का जाति व्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव जातीय-अन्योन्याश्रम को जन्म देना है।

राजनैतिक संस्थाओं के प्रतिनिधिक स्वभाव के कारण राजनैतिक दलों का तेजी से निर्माण हुआ और विभिन्न जातियों के लोग अपने लक्ष्यों और हितों को दृष्टि में रखते हुए इन राजनीतिक दलों में सम्मिलित होने लगे। परिणामस्वरूप जिन राजनीतिक दलों की स्थापना हुई, उनमें लगभग सभी राजनीतिक दलों में विभिन्न जातियों के लोग सम्मिलित हुए और इस तरह राजनीतिक उद्देश्यों ने ब्राह्मणों से लेकर शूद्रों तक को एक ही राजनीतिक मंच पर खड़ा कर दिया। एक दल में रहने के कारण और कुछ राजनीतिक लक्ष्यों को सामूहिक प्रयत्नों के द्वारा प्राप्त करने के लिए इन बहुजातीय राजनीतिक दलों के अन्तर्गत पारस्परिक सहिष्णुता की भावना का विकास हुआ। आज भारत में शायद ही ऐसा कोई राजनीतिक दल हो जो सजातीय हो, यहाँ तक कि 0 एम0 के0 जैसे राजनीतिक दल में भी, जो ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन के फलस्वरूप अस्तित्व में आया, विभिन्न उप-जातियाँ पाई जाती हैं। सारांश में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था ने विभिन्न जातियों को अधिक से अधिक राजनीतिक लाभों (उदाहरणार्थ विधान मण्डल और स्थानीय निकायों की सदस्यता, उच्च पदों पर नियुक्ति इत्यादि) के लिए प्रोत्साहित किया और चूँकि यह राजनीतिक लाभ परम्परावादी जातीय बंधनों में रहकर प्राप्त करना सम्भव न था, इसलिए विभिन्न जातियों ने आधुनिक राजनीतिक मूल्यों को बड़ी मात्रा में अपनाया। फलतः जातीय व्यवस्था का स्वरूप परिवर्तित हुआ। शायद इसीलिए रूडाल्फ का कहना है कि भारत में जाति व्यवस्था का पूर्ण रूप से अन्त नहीं होगा, वरन् वह नई राजनीतिक व्यवस्था के अनुरूप बनने के लिए परिवर्तित होती रहेगी।

जाति व्यवस्था का राजनीति पर प्रभाव

राजनीति और जाति के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में दूसरा प्रश्न यह है कि जाति व्यवस्था ने भारतीय राजनीति को कहाँ तक प्रभावित किया है? यह बराबर कहा जाता है कि भारतीय राजनीति और विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं की कार्य प्रणाली में जातीय भेदभाव इस तरह घुल-मिल गए हैं कि यह संस्थाएँ सुचारु रूप से कार्य करने में असमर्थ रही हैं। जातिवाद का प्रभाव राजनीतिक दलों, निर्वाचनों और राजनीतिक लाभों के वितरण में परिलक्षित होता है। कांग्रेस सहित सभी राजनीतिक दलों में जातीय आधार पर अनेक गुट पाए जाते हैं, जिनमें प्रतिस्पर्धा की भावना विद्यमान है। विभिन्न राजनीतिक दली निर्वाचन के अवसर पर अपने उम्मीदवारों का चयन करते समय उनकी योग्यतासे ज्यादा सम्बन्धित निर्वाचन क्षेत्रों में विभिन्न जातियों की जनसंख्या को विशेष रूप से दृष्टि में रखते हैं। चुनाव अभियान में जातिवाद को साधन के रूप में अपनाया जाता है और प्रत्याशी जिस निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ रहा है, उस निर्वाचन क्षेत्र में जातिवाद की भावना को प्रायः उकसाया जाता है

ताकि सम्बन्धित प्रत्याशी की जाति के मतदाताओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त किया जा सके। इसमें संदेह नहीं कि भारत में मतदाताओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त किया जा सके। इसमें संदेह नहीं कि भारत में मतदाताओं का मतदान व्यवहार बहुत कुछ जातीयता पर आधारित रहा है।

यह उल्लेखनीय है कि विगत दो दशकों में जाति के आधार पर अलग-अलग राजनैतिक दलों की स्थापना हुई है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जातियों द्वारा बहुजन समाज पार्टी का निर्माण किया गया है। इसी प्रकार समाजवादी पार्टी मूलरूप से समाज के पिछड़े वर्गों का प्रतिनिधित्व करती है। चुनाव के पश्चात् राजनीतिक नेतृत्व का प्रश्न प्रायः जाति के आधार पर तय होता है और विधानमण्डल में भी जातीय आधार पर अलग-अलग गुट संगठित होते रहे हैं। मंत्रिमण्डल के निर्माण में भी जातीय भेदभाव किसी-न-किसी रूप में दिखाई देता है और राजनीतिक पदों के वितरण में भी जाति के आधार पर भेदभाव का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं प्रतीत होती। जातिवाद का प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित न रहकर प्रशासकीय क्षेत्र में भी दिखाई देता है और सरकारी पदाधिकारियों द्वारा विभिन्न व्यक्तियों के बीच धर्म और जाति के आधार पर भेदभाव किए जाने की घटनाएँ बराबर सामने आती हैं। राजनीतिक क्षेत्र में जातिवाद के इस प्रकार प्रवेश करने के कारण ही यह सामान्य धारणा पाई जाती है कि जातिवाद ने भारत के संसदीय लोकतन्त्र के स्वरूप को विकृत कर दिया है।

राष्ट्रीय राजनीति की तुलना में, राज्यों की राजनीति में जातिवाद का प्रभाव कुछ अधिक और विशेष ढंग का दिखाई देता है। कुछ विचारकों के अनुसार भारत के विभिन्न राज्यों में जाति के चार विभिन्न प्रतिमान विकसित हुए हैं। जातिवाद का पहला स्वरूप दक्षिणी भारत और विशेषकर तमिलनाडु में मिलता है, जहाँ ब्राह्मण और अनेक निम्न जातियों के बीच गंभीर संघर्ष रहा है। तमिलनाडु में आरम्भ से ही राजनीति पर ब्राह्मणों का प्रभुत्व रहा और इसके विरुद्ध काफी दिनों से आन्दोलन चलता रहा, जिसके परिणामस्वरूप रामास्वामी नायकर द्वारा 'द्राविड़ काजगाम' नामक संगठन की स्थापना की गई जो बाद में 'द्राविड़ मुनेत्र काजगाम' दल के रूप में विकसित हुआ। तमिलनाडु में यह आन्दोलन ब्राह्मणों को उच्च स्थानों से हटाने के लिए था। 1914 से यह ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन शुरू हुआ, और 1916 में एक पृथक राजनीतिक दल 'जस्टिस पार्टी' के नाम से स्थापित हुआ जिसका उद्देश्य और ब्राह्मण जातियों के हितों को विकसित तथा सुरक्षित करना था। इस संगठन का उद्देश्य सरकार का समर्थन प्राप्त करके प्रशासन और स्थानीय निकायों, यहाँ तक कि शिक्षा संस्थाओं में गैर ब्राह्मण जातियों के लिए स्थान सुरक्षित कराना था। 1922 में सरकार द्वारा लोक सेवाओं में निर्धारित किए गए कोटे में गैर ब्राह्मण जातियों के लिए लगभग 42 प्रतिशत और ब्राह्मण जाति के लिए 16 प्रतिशत स्थान निर्धारित किए गए। इससे इस बात का संकेत मिलता है कि ब्रिटिश काल में ही गैर ब्राह्मण जातियाँ ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन में बड़ी हद तक सफल हुईं। 1949 में यह आन्दोलन सी0 एन0 अन्नादुराई के नेतृत्व में डी0 एम0 के0 के अधीन शुरू हुआ। ब्राह्मण विरोधी भावना के राजनीतिक महत्व को दृष्टि में रखते हुए अन्य राजनीतिक दल भी जाति युद्ध में संलग्न हो गए। यहाँ तक कि कांग्रेस पार्टी द्वारा राजगोपालाचारी (जो एक ब्राह्मण थे) के राजनीतिक प्रभाव को कम करने के लिए कामराज नादर को राजनीति में ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया गया। संक्षेप में स्वतन्त्रता से पहले और स्वतन्त्रता के बाद तमिलनाडु में ब्राह्मण और निम्न जातियों के बीच घोर टकराव रहा और इस संघर्ष में ब्राह्मणों को पराजित होना पड़ा।

महाराष्ट्र की राजनीति तमिलनाडु से कुछ भिन्न रही, वहाँ मराठा और ब्राह्मणों के बीच संघर्ष रहा। इस संघर्ष में मराठा जाति ने

ब्राह्मणों के शताब्दियों से चले आ रहे प्रभुत्व का अन्त किया। बीसवीं शताब्दी की दूसरी चौथाई में राजनीतिक दलों में भी ब्राह्मणों का आधिपत्य था। उदाहरण के लिए तिलक, गोखले, हिगड़ेवाल, गोलवालकर, एस0 एन0 डांगे आदि ब्राह्मण थे। स्वतन्त्रता के बाद मराठा जाति ने ब्राह्मणों को पराजित कर दिया और यह आन्दोलन 1960 में अपनी पूर्णता को पहुँच गया जब महाराष्ट्र नामक एक पृथक राज्य की स्थापना की गई और मराठा जाति को राजनीति में पूर्ण प्रधानता प्राप्त हुई। इस नए महाराष्ट्र राज्य में मराठा जाति की संख्या 45 प्रतिशत थी। ए0 जे0 दस्तूर के शब्दों में "जिस दिन महाराष्ट्र का निर्माण हुआ, उस दिन इस राज्य के राजनीतिक विशिष्ट वर्ग और राजनीतिक नेतृत्व में अत्यधिक महत्वपूर्ण और मौलिक परिवर्तन हुए। सत्ता, प्रभाव और शक्ति ब्राह्मणों के हाथों से निकल कर मराठों के हाथों में पहुँच गई।"

गुजरात, आन्ध्र और कर्नाटक जातिवाद का तीसरा माडल प्रस्तुत करता है। इन तीनों ही राज्यों में तीन मध्यमवर्गीय जातियाँ राजनीतिक संघर्ष में रत दिखाई देती हैं। आन्ध्र में यह टकराव कम्मा और रेड्डी जातियों के बीच पाया जाता है। 1934 में आन्ध्र प्रदेश में साम्यवादी दल की स्थापना के बाद से इस दल का नेतृत्व कम्मा जाति के हाथों में रहा, जबकि कांग्रेस पार्टी में रेड्डी जाति का प्रभुत्व रहा। कर्नाटक में यह विरोध लिंगायत तथा ओकीलीगा जातियों के बीच पाया जाता है। गुजरात में पट्टीदार तथा क्षेत्रीय जातियों के बीच प्रतिस्पर्धा पाई जाती है। उपर्युक्त तीनों राज्यों (आन्ध्र, कर्नाटक, गुजरात) में यह विशेषता दिखाई देती है कि इन राज्यों में राजनीतिक क्षेत्र में केवल दो जातियों का प्रभुत्व है जो अपनी प्रथाओं, सामाजिक स्थिति और सामाजिक-आर्थिक साधनों की दृष्टि से एक दूसरे से बहुत मिलती-जुलती हैं। दूसरे शब्दों में इस तरह कहा जा सकता है कि तमिलनाडु और महाराष्ट्र के विरुद्ध जहाँ असमान जातियों के बीच टकराव पाया जाता है, इन राज्यों में यह प्रतिस्पर्धा लगभग दो समान जातियों के बीच पाई जाती है।

बिहार की स्थिति उपर्युक्त राज्यों से भिन्न है। यहाँ उच्च जातियाँ, ब्राह्मण क्षत्रिय, और वैश्य अब भी सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों के धारक हैं और उनके बीच राजनीतिक प्रतियोगिता पाई जाती है। निम्न जातियाँ अब भी पिछड़ी स्थिति में हैं। राजस्थान और मध्य प्रदेश में भी राजनीति पर उच्च जातियों का एकाधिकार है और निम्न जातियाँ उभरने का प्रयत्न कर रही हैं। अतः इन राज्यों में राजनीतिक प्रतियोगिता उच्च जातियों के बीच है और कोई भी एक जाति अपने प्रभुत्व को स्थापित करने की स्थिति में नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि भारतीय राजनीति में जातिवाद का प्रभाव विद्यमान है और रूडाल्फ का यह कहना काफी हद तक ठीक है कि "(भारत के) नए राजनीतिक तंत्र के परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत जाति भारतीय समाज का एक केन्द्रीय तत्त्व है, यद्यपि इसने जनतन्त्रीय राजनीति के मूल्यों और उपायों तथा साधनों को ग्रहण किया है।" ऐसा लगता है कि राजनीति में जातिवाद को एक साधन के रूप में अपनाया गया है, क्योंकि इसके माध्यम से राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने और अन्ततोगत्वा राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

छुआछूत के खिलाफ

1917 तक कांग्रेस समाज-सुधार के संबद्ध मुद्दों को उठाने से इनकार करती आई थी। इससे भारतीय जनता में पनपती राजनीतिक एकता पर गलत असर पड़ा। लेकिन 1917 में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास कर जनता से अपील की कि वह ऐसी सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करे, जिनके कारण पिछड़े वर्गों को हेय दृष्टि से देखा जाता है, उनके साथ अन्याय किया जाता है। लोकमान्य तिलक ने भी छुआछूत जैसी कुरीतियों की

आलोचना की। लेकिन इन कुरीतियों को खत्म करने के लिए कोई ठोस कार्यक्रम नहीं बनाया गया। राष्ट्रीय नेताओं में गाँधीजी ही पहले नेता थे, जिन्होंने इसके खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने छुआछूत खत्म करने को सबसे अधिक प्राथमिकता दी और घोषणा की कि छुआछूत के खिलाफ संघर्ष, आज़ादी के लिए संघर्ष से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

1923 में कांग्रेस ने छुआछूत को खत्म करने के लिए ठोस कदम उठाने का फैसला किया। इसके तहत मुख्य रूप से लोगों का शिक्षित करना था और हिन्दुओं की विभिन्न जातियों के बीच इस कुरीति के खिलाफ प्रचार करना था। जिस समय राष्ट्रवादी आंदोलनकारियों ने छुआछूत के खिलाफ आंदोलन छेड़ने की चेतावनी दी, लगभग उसी समय केरल में दो महत्वपूर्ण घटनाएँ हुईं।

वायकोम सत्याग्रह

केरल में छुआछूत का रोग गहरी जड़ें जमाए हुए था। दलित वर्ग यानी अवर्ण (जिनकी कोई जाति न थी और जो बाद में हरिजन कहलाए) इस सामाजिक कुरीति के शिकार थे। ये अछूत तो माने ही जाते थे, सवर्णों के नज़दीक भी नहीं जा सकते थे। सवर्णों का कहना था कि इनके नज़दीक आने से ही वे अपवित्र हो जाएंगे। एझवा और पुलैया अछूत जातियों को सवर्णों से क्रमशः 16 और 32 फुट की दूरी बनाए रखनी पड़ती थी। 19वीं सदी की समाप्ति के समय से ही इन कुरीतियों के खिलाफ संघर्ष होता आ रहा था। तमाम सुधारवादी व बुद्धिजीवी, जिनमें नारायण गुरु, एन0 कुमारन और टी0 के माधवन के नाम उल्लेखनीय हैं, इसके खिलाफ लड़ते आ रहे थे।

काकिनाडा सम्मेलन के तुरंत बाद केरल प्रदेश कमेटी ने छुआछूत उन्मूलन को संघर्ष का सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा बनाया। छुआछूत के खिलाफ बड़े पैमाने पर प्रचार-कार्य शुरू हुआ। हरिजनों के सामाजिक व शैक्षणिक उत्थान के लिए काम शुरू किए गए। हिन्दू मंदिरों में और सार्वजनिक सड़कों पर हरिजनों के प्रवेश के लिए आंदोलन छेड़ने का निर्णय किया गया। आंदोलनकारियों का मानना था कि यह छुआछूत की कुरीति पर बहुत बड़ा हमला होगा।

त्रावनकोर के एक गाँव वायकोम से इस आंदोलन की शुरुआत हुई। इस गाँव में एक बड़ा मंदिर था, जिसकी चारदीवारी के चारों ओर मंदिर की ही सड़कें थीं। इन सड़कों पर अवर्ण नहीं चल सकते थे। केरल प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने छुआछूत के खिलाफ सत्याग्रह के हथियार को इस्तेमाल करने का निर्णय किया। 30 मार्च 1924 को कांग्रेसियों के नेतृत्व में सवर्णों (हिन्दुओं) और अवर्णों का एक जुलूस, छुआछूत कानून की अवहेलना करते हुए मंदिर पहुँच गया।

गुरुवायूर सत्याग्रह

दलित व पिछड़े वर्गों के सामाजिक व आर्थिक उत्थान तथा छुआछूत उन्मूलन के लिए संघर्ष 1924 के बाद भी चलता रहा। यह गाँधीजी के 'रचनात्मक कार्यक्रमों' का एक हिस्सा था। केरल में एक बार फिर इस संघर्ष ने जोर पकड़ा।

के0 केलप्पण के उकसाने पर केरल प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने 1931 में मंदिर में प्रवेश का सवाल फिर उठाया। इस समय असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया गया था। मलाबार में अनेक जनसभाएँ आयोजित की गईं। केरल प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने पहली नवंबर 1931 को गुरुवायूर में मंदिर प्रवेश सत्याग्रह छेड़ने का निर्णय किया। पीत सुब्रह्मण्यम तिरुमाबु के नेतृत्व में 16 स्वयंसेवकों का एक जत्था 21 अक्टूबर को कान्नामूर से गुरुवायूर की ओर पैदल मार्च करता हुआ चल पड़ा। इस जत्थे में सबसे पिछड़ी जाति, हरिजन से लेकर सबसे ऊँची जाति, नंबूदिनी तक के लोग शामिल थे। इस मार्च ने पूरे देश में जाति-विरोधी

भावना को उकसाया। पहली नवंबर को, अखिल केरल मंदिर प्रवेश दिवस मनाया गया, प्रार्थनाएँ हुईं, जुलूस निकले, सभाएँ आयोजित की गईं और चंदा इकट्ठा किया गया। मद्रास, बंबई, कलकत्ता, दिल्ली व कोलंबो (श्रीलंका) में भी इस तरह के कार्यक्रम आयोजित किए गए। इसे गजब की लोकप्रियता मिली। राष्ट्रीय स्तर के तमाम नेता मलाबार पहुँचे। न स्वयं-सेवकों की कमी थी, न पैसे की। सबसे अधिक उत्साहित था युवा वर्ग। हजारों युवक संघर्ष में सबसे आगे थे और लगातार इसमें शामिल होते जा रहे थे। छुआछूत-विरोधी आंदोलन ने काफी जोर पकड़ा और इसे गजब का समर्थन मिला। तमाम दर्शनार्थियों ने अपने चढ़ावे को, पुजारी को देने की बजाय सत्याग्रहियों को दे दिया। इन्हें लगा कि सत्याग्रहियों का शिविर शायद मंदिर से भी ज़्यादा पवित्र है।

मंदिर प्रवेश आंदोलन में वे सभी रणनीतियाँ अपनाई गईं, जो राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान अपनाई गई थीं या अपनाई जा रही थी। इस आंदोलन के संगठनकर्ताओं ने राष्ट्रीय एकता का एक मजबूत आधार तैयार किया, छुआछूत के खिलाफ एक सशक्त जनमत तैयार किया। लेकिन भारत में जाति-भेद, जातीय असमानता और इससे जुड़ी अन्य कुरीतियों की जड़ें समाज में इतनी गहरी हैं कि पैठी हुई थीं कि महज मंदिर प्रवेश आंदोलन की सफलता से ये समाप्त होने वाली नहीं थीं। लेकिन केरल के मंदिर प्रवेश के लिए सत्याग्रह आंदोलनों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। ई0 एम0 एस0 नंबूदिरीपाद ने बाद में लिखा, "गुरुवायूर मंदिर सत्याग्रह एक ऐसी घटना थी, जिसने मेरे जैसे हजारों युवकों को उद्बलित किया और जनता के एक बहुत बड़े तबके को अपने बाजिब अधिकारों और सम्मान के लिए संघर्ष करने को प्रेरित किया। इन्हीं युवकों ने बाद में आंदोलन की रहनुमाई की और मजदूरों-किसानों के ऐसे संगठनों को जन्म दिया, जो धार्मिक या साम्प्रदायिक विचारधारा से एकदम दूर थे।"

निष्कर्ष

भविष्य में भारतीय राजनीति में जातिवाद का क्या स्वरूप होगा और भारतीय राजनीति कहाँ तक अपने को जाति के प्रभाव से मुक्त रख सकेगी, इस सम्बन्ध में कोई अन्तिम मत व्यक्त करना कठिन है। लेकिन सैद्धान्तिक रूप से यह निष्कर्ष निकालना गलत न होगा कि शिक्षा के प्रसार और आधुनिकीकरण के मूल्यों को वास्तविक रूप से अपनाए जाने के बाद विभिन्न जाति-समूह राजनीतिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के उद्देश्य से समानता और धर्मनिरपेक्षता के आदर्शों से समझौता करने के लिए मजबूर होंगे। मंदिर प्रवेश आंदोलन और छुआछूत के खिलाफ राष्ट्रीय आंदोलन की सबसे बड़ी कमी यह थी कि इसने जनता को छुआछूत उन्मूलन के लिए उद्बलित किया, पर जाति प्रथा के खिलाफ आंदोलन नहीं छेड़ा। हालांकि स्वाधीन भारत के संविधान में राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव दिखाई पड़ा, जातीय असमानता को नकारा गया, छुआछूत का अपराध घोषित किया गया और सभी नागरिकों को समान अवसर देने का वादा किया जाय। लेकिन इस आंदोलन की कमजोरियाँ आज़ाद हिन्दुस्तान में स्पष्ट दिखाई दीं। जातिवाद की जड़े मजबूत होती गईं और पिछड़े वर्गों पर अत्याचार व उनके प्रति भेद-भाव बरकरार रहा।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. रजनी कोठारी : कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स (ओरियंट लांगमैन, दिल्ली 1970), पृ0-4.
2. वही।
3. मोरिस जॉस : गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स ऑफ इंडिया (हाचिंसन एण्ड कं0, लंदन, 1967), पृ0-52-60.
4. वही, पृ0-52.

5. एस0 एन0 श्रीनिवास : सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया (एलायड पब्लिशर्स, दिल्ली 1966), पृ0-146.
6. ए0 जे0 दस्तूर : दि पैटर्न ऑफ महाराष्ट्र पोलिटिक्स, इकबाल, नारायण (स) – स्टेट पोलिटिक्स इन इंडिया (मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1967) में उद्धृत, पृ0-188.
7. प्रोफेसर बिपिन चन्द्र, मृदूला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, क0 न0 पनिकर एवं सुचेता महाजन : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ0-174-175.
8. वही, पृ0-175-176.
9. वही, पृ0-176-178.
10. एस0 एम0 सईद : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, पृ0-361-369.
11. डॉ0 आर0 के 0 परूथी : आधुनिक भारत (1858-1905) संगठित राष्ट्रवाद का उदय।
12. रश्मि पाठक : भारत में अंग्रेजी राज।